दो शब्द

परमहंस स्वामी ब्रह्माण्डेश्वरानन्द जी सिद्धाश्रम के अद्वितीय परमहंस योगी, तपोनिष्ठ और ब्रह्मवेत्ता हैं, जिन्होंने अपनी साधना और तपस्या के बल पर शीर्ष सम्मान प्राप्त किया है ।

सिद्धाश्रम का प्रत्येक योगी परमहंस स्वामी ब्रह्माण्डेश्वरानन्द जी को अत्यन्त आदर और सम्मान के साथ देखता है, आठ सौ, और हजार वर्ष के आयु प्राप्त योगी भी परमहंस स्वामी जी के चरणों की धूल अपने सिर पर लगाने में गौरव अनुभव करते हैं ।

स्वामीजी ने उच्च साधना के बल पर प्रकृति और ब्रह्माण्ड के सर्वथा गोपनीय और महत्वपूर्ण रहस्यों को सुलझाया है, वे ब्रह्माण्ड के किसी भी ग्रह पर आसानी से आवागमन करने में सक्षम हैं, हिमालय में कई सौ वर्षों तक साधना सम्पन्न कर पूर्ण 'तत्ववेत्ता' और 'ब्रह्मवेत्ता' जैसी दिव्यताओं को प्राप्त किया है, वास्तव में ही स्वामीजी वन्दनीय हैं ।

परमहंस स्वामी ब्रह्माण्डेश्वरानन्द जी मितभाषी हैं, जो कुछ बोलते हैं, नपे तुले शब्दों में, अपनी आत्मा की अनुभूति पर परख कर, और ज्ञान की चेतना पर अनुभव करने के बाद ही वे अपने मुंह से शब्द उच्चरित करते हैं, पर उनका कहा हुआ प्रत्येक शब्द इतिहास बन जाता है, और सिद्धाश्रम के योगी उस शब्द को पूर्ण प्रामाणिकता के साथ स्वीकार करते हैं।

स्वामी ब्रह्माण्डेश्वरानन्द जी ने अत्यन्त भाव विभोर हो कर **"निखिलेश्वरानन्द स्तवन"** लिखा था, उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, कि **ब्रह्माण्ड से निकली हुई रश्मियों और ध्वनियों को मेरी आत्मा ने स्वीकार किया, और वे ही ध्वनियां और चेतना शब्दों का रूप धारण कर मेरे मुंह से श्लोकों के रूप में उच्चरित हुई, मैंने अपने जीवन में किसी के बारे में न तो कुछ लिखा, और न कभी कुछ कहा, परन्तु स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी के बारे में मेरी वाणी स्वतः मुखरित हो गई, और इन श्लोकों के माध्यम से मैं अपने आप को गौरवान्वित अनुभव करता हूं, कि मैं ऐसे अद्वितीय महापुरुष के बारे में श्रद्धा सुमन व्यक्त कर सका, और अपनी भावनाओं को तपस्यात्मक वाणी दे सका।**

स्वामी ब्रह्माण्डेश्वरानन्द जी के शब्दों में "परम पूज्य स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी अपने

आप में अद्वितीय सिद्ध योगी हैं, जो सूर्य के समान तेजस्वी और चन्द्रमा के समान शीतल हैं, योगियों की तरह वे अत्यन्त सामान्य, सरल रूप में रहते हैं, परन्तु उनका रोम-रोम अपने आप में दिव्य और चेतना युक्त है, वर्तमान विश्व उनकी तपस्या, साधना और तेज निष्ठता के प्रति ऋणी रहेगा।

सिद्धाश्रम में सैकड़ों-हजारों योगी हैं, परन्तु उनकी चरण-धूलि प्राप्त करने के लिए हम सब लालायित रहते हैं, उनके साथ मात्र एक क्षण बिताना भी जीवन का सौभाग्य माना जाता है, उन्होंने सिद्धाश्रम को सही अर्थों में सिद्धाश्रम बनाया, और आज सिद्धाश्रम में जितने उच्च कोटि के योगी और परमहंस, तत्ववेत्ता और ब्रह्मवेत्ता साधक हैं, वे किसी न किसी रूप में निखिल जी के ऋणी हैं, उन्होंने समय-समय पर लगभग सभी का मार्गदर्शन किया है, साधना की बारीकियां स्पष्ट की हैं, और हम सब ने यह अनुभव किया है, कि सभी महाविद्याएं, सभी सिद्धियां उनके सामने हाथ बांधे खड़ी रहती हैं, मैंने उन्हें हिमालय की गहन बर्फीली गुफा में काफी लम्बे समय तक उच्च कोटि की साधनाएं सम्पन्न करते देखा है, वायुमार्ग से एक

स्थान से दूसरे स्थान पर गतिशील होने की क्रिया उन्होंने ही मुझे कृपा पूर्वक प्रदान की थी, "जल गमन प्रक्रिया" "ब्रह्माण्ड संचरण क्रिया" आदि में वे सिद्धहस्त हैं, और परमहंस स्वामी सच्चिदानन्द जी के अत्यन्त प्रिय शिष्य होना भी अपने आप में गौरवशाली और महत्वपूर्ण है।

यह "निखिलेश्वरानन्द स्तवन" दूसरे शब्दों में "निखिलेश्वरानन्द महिम्न स्तोत्र" है, मैंने इसको उच्चारण करने के लिए या संयोजन करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया, मुझे ऐसा अनुभव हुआ, कि स्वयं पूरा ब्रह्माण्ड इस महिम्न स्तोत्र को उच्चरित करना चाहता है, और मैं तो केवल माध्यम या निमित्त मात्र बना हूं, यह मेरा सौभाग्य है, कि इन शब्दों का संगुंफन और संयोजन मेरे होठों से उच्चरित हुआ, यह मेरे लिए अत्यन्त गौरव की बात है।

परन्तु क्या उनके विराट व्यक्तित्व को इन श्लोकों में समेटा जा सका है, उनकी अद्वितीय उपलब्धियों को इन थोड़े से शब्दों में संयोजित की जा सकी हैं, शायद नहीं, यदि ऐसे दस हजार महिम्न स्तोत्र या स्तवन लिख दिये जांय, तब भी उनके गुणों का, उनकी चेतना और उनकी विराटता को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

फिर भी ब्रह्माण्ड की ज्ञान रश्मियों और सिद्धाश्रम की चेतना ने एक प्रयत्न किया है, मैंने अनुभव किया, कि अदृश्य शब्द शक्ति मेरे मुंह से अनायास उच्चरित हो रही

है, यह प्रकृति लीला विहारिणी की क्रिया है, और इस प्रकार इस स्तवन की रचना हुई।

और आज पूरा सिद्धाश्रम इस स्तवन को "तपस्यात्मक स्तवन" या "सौभाग्य स्तवन" के नाम से उच्चरित करता है, जीवन की पूर्णता और गोपनीय रहस्यों, सिद्धियों तथा अनुभूतियों की प्राप्ति के लिए इस स्तवन का उच्चारण कर वे साधना पथ पर अग्रसर होते हैं, और उन्हें ऐसा प्रतीत होता है, कि साधना पथ सुगम हो गया है, अनुभूतियां अनुकूल हो गई हैं, और शक्तियां पूर्णतः नियन्त्रण में हो गई हैं।

स्वामी ब्रह्माण्डेश्वरानन्द जी, सिद्धाश्रम के परमहंस योगी हैं, सामान्यतः उनसे मिलना असंभव है, उनके पट्ट शिष्य स्वामी योगेश्वरानन्द जी से गंगोत्री स्थान पर अनायास भेंट हो गई थी, और वे उस गंगोत्री के पावन परम दिव्य स्थान पर अपने सुमधुर कण्ठ से "निखिलेश्वरानन्द स्तवन" उच्चरित करते रहे, और मैं लिखता रहा, उन्होंने ही इसका अर्थ-संयोजन मुझे स्पष्ट किया, और यह मेरा सौभाग्य है, कि मैं उसको लिपिबद्ध कर सका, स्वामी योगेश्वरानन्द जी स्वयं घुमक्कड़, वीतरागी और सिद्धाश्रम के परमहंस योगी हैं, फिर दूसरी बार उनसे कहां और कब मिलना हो, या न हो, कुछ कहा नहीं जा सकता, पर उनके द्वारा "निखिले-

श्वरानन्द स्तवन'' के रूप में जो उज्जवल रत्न अनायास सुलभ हुआ, उसके लिए हम सभी गौरवान्वित हैं।

स्वामी योगेश्वरानन्द जी के शब्दों में इस स्तवन की संस्कृत भाषा अपने आप में स्वतन्त्र और सहज गम्य है, पाणिनी के व्याकरण से बंधी हुई नहीं है, और न छन्द, शब्द-संयोजन तथा व्याकरण नियमों में जकड़ी हुई। ये तो ब्रह्माण्ड की रश्मियों से स्वतः उत्पन्न स्वतन्त्र श्लोक हैं, जो कि शिखरिणी छन्द के माध्यम से स्पष्ट हुए हैं, वास्तव में ही वे जब इसे मधुर कण्ठ से गा रहे थे, तो सारी प्रकृति स्तब्ध हो कर सुन रही थी, उनके प्रत्येक शब्द में प्रामाणिकता है, वास्तव में ही ये श्लोक और इनका अर्थ अपने आप में स्वतन्त्र, व्याकरण नियमों से उन्मुक्त तथा सहज भाव गम्य है, यह स्तवन गीता से भी ज्यादा पवित्र, देवताओं से भी ज्यादा उज्जवल और तपस्या से भी ज्यादा महिमामय है, प्रत्येक साधक को नित्य एक बार तो इसका पाठ करना ही चाहिए, यदि इसके पाठ से उन्हें सिद्धि, सफलता, सुख, सौभाग्य, ऐश्वर्य और गुरुदेव का सान्निध्य प्राप्त हो सका, तो मैं इसे अपना सौभाग्य समझूंगा।

— योगेन्द्र निर्मोही

गुरु पूर्णिमा-१९९०

निखिलेश्वरानन्द–स्तवन

योगीराज

परमपूज्य परमहंस

ब्रह्माण्डेश्वरानन्द जी

॥ १ ॥

महोस्त्वं रूपं च मपर विचिराक्षै गुरूवदैः
श्रियै दीर्घकाय विधुरम विदारैं नव निधि ।
अतस्वा प्रीचार्यं अथ प्रहर रूपै सद गुणैं
गुरौर्देवं श्रेयं निखिल हृदयेश्च महपरौ ॥

"मेरे परम आराध्य गुरुदेव ! आप पृथ्वी पर प्रत्यक्ष देव हैं, जो चिन्त्य-अचिन्त्य शुद्ध बुद्ध आत्म-स्वरूप एवं पूर्णताप्रदायक हैं, आप में और गणपति में बहुत साम्य है, वे गणपति अर्थात् गण समूह के अधिपति हैं, और आप साधक अधिपति एवं शिष्या-धिपति हैं, उनके पास तो मात्र "ऋद्धि" एवं "सिद्धि" दो ही शक्तियां हैं, पर आपके पास तो दैविक शक्तियां असीमित हैं, उनका विस्तार सीमित है, पर आपका विचरण, विकास, विस्तार असीमित है, आप समस्त ब्रह्माण्ड में निर्बाध गति से विचरण करने में सक्षम हैं, इसलिए ग्रन्थ लेखन से पूर्व सरस्वती, वाग्देवी और गणपति को तो मैं स्मरण करता ही हूं, पर आप तो निखिलेश्वर हैं, देव स्वरूप हैं, ब्रह्माण्ड स्वरूप हैं, आपको भक्तिभाव से प्रणाम करता हुआ सदैव अपने रोम-रोम से "निखिलेश्वर" और "गुरू" शब्द उच्चारण करता हुआ पूर्णत्व, आपकी भक्ति, एवं सामीप्यता प्राप्त करने का अभीप्सित हूं ॥ १ ॥

॥ २ ॥

गुरुर्देवं देवं निखिल भव योगी सर परौ
परिपूर्ण ध्येयं विचरति अणीमादि श्रुयते ।
कलौ सन्यासं वै न च श्रिय परै र्न महपरि
अहो दिव्यात्मं च परि वद सदै ब्रह्माण्ड नमन ॥

हे, योगीराज निखिलेश्वरानंद जी, आप योगियों में सर्वश्रेष्ठ योगी और सन्यासियों में अद्वितीय सन्यासी हैं, योग के जितने भी क्षेत्र और आयाम हैं, आपने उनको पूर्णता के साथ समझा है, और अपनी दिव्य देह पर इसका उपयोग किया है, इसी लिए अणिमादि सिद्धियां स्वतः आपके सामने विचरण करती रहती हैं, सन्यास की जो मर्यादाएं हैं, उसकी जो ऊंचाई और विशेषताएं हैं, उनको आपने सम्पूर्णता के साथ हम सब के सामने रख कर यह स्पष्ट किया है, कि इस क्षेत्र में किस प्रकार से पूर्णता पाई जा सकती है ? जीवन के मूल्यों को आपने पूर्णता के साथ सामने रखा है, तो जीवन की ऊंचाइयों को भी स्पर्श कर आप अपने आप में अद्वितीय बन गये हैं, आने वाले कई सौ वर्षों तक कोई भी सन्यासी या योगी आपकी ऊंचाई तक नहीं पहुंच सकेगा, हम जब भी आपको देखते हैं, तो ऐसा लगता है कि एक दिव्यात्मा ब्रह्माण्ड से नीचे हम पृथ्वी वासियों के सामने अवतरित हुई है, ऐसा लगता है कि जैसे कोई देवदूत इस भौतिकमय विश्व में एक सन्तुलन, एक प्रकाश बिखेरने के लिए उपस्थित हुआ है, हम सब सिद्धाश्रम के योगी आपको बार-बार नमन करते हैं ॥ २ ॥

॥ ३ ॥

सहौ चिन्त्यं देव भवति नमनः वै निखिल यो
सहौ देवं आत्म्यं अवतरित भूमि ग्रह इति ।
दिवौ सिद्धाश्रम वै गति इति भवेत्स्पंदित महो
महम् देवं व्यग्र इहमिद सदौ पूर्ण गति वै ॥

आप सही अर्थों में सिद्धाश्रम के प्राण स्वरूप हैं, जिस प्रकार से बिना प्राणों के देह का कोई अस्तित्व नहीं रहता, जिस प्रकार बिना आत्मा के शरीर स्पंदित नहीं होता, उसी प्रकार आपके बिना सिद्धाश्रम को कल्पना करना भी व्यर्थ है, सिद्धाश्रम निश्चय ही अद्वितीय सिद्धस्थली है जो हजारों-लाखों वर्षों से गतिशील है, पर आप जैसा युग-पुरुष पहली बार इस पृथ्वी ग्रह पर अवतरित हुआ है, जिसने सिद्धाश्रम को सही अर्थों में सिद्धाश्रम बनाया है, उसके निष्प्राण शरीर में प्राण स्पंदित किये हैं, उसकी सुनसान स्थली को चेतनायुक्त और ऊर्जस्वितायुक्त बनाया है, अब इस सिद्धाश्रम में गति है, स्पन्दन है, हलचल है, मस्ती है, तरंग है, छलछलाहट है, और जीवन्तता है, अब इस सिद्धाश्रम में एक प्रवाह है, जिसे इसकी शोभा और इसकी प्राणश्चेतना अत्यधिक मुखरित हो उठी है, अब यह सिद्धाश्रम सही अर्थों में ब्रह्माण्ड का अद्वितीय तीर्थ स्थल बन गया है, जहां देवता लोग भी आने के लिए प्रयत्नशील हैं और जहां की माटी को अपने सिर से लगाने के लिए व्यग्र हैं, क्योंकि यह सारा सिद्धाश्रम आपके आने से सुरभित, सुगन्धित और देवताओं के लिए भी अद्वितीय बन गया है ॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

निखिल त्वं प्राण त्वं भवति भवस्पर्श महमहो
महत् सिद्धि स्पर्श भवति नृत्वत्व करति।
महोद् योगी स्पर्श चरण करण पूर्ण सह महौ
ऋषिर्साक्षं पूर्ण भवति महतं चंदन इति ॥

हे, परमपूज्य निखिलेश्वरानन्द जी! हे सिद्धाश्रम के प्राणस्वितायुक्त तेजस्वी महामानव! हे योगियों में अद्वितीय योगीराज! आपके आने से हम सब धन्य हो गये हैं, इस सिद्धाश्रम में सैकड़ों-हजारों वर्षों की आयु प्राप्त योगी इस समय भी साधना एवं तपस्या रत हैं, परन्तु फिर भी वे आपकी ऊंचाई को प्राप्त नहीं कर पाये हैं, आपने जिन सिद्धियों को प्राप्त किया है, वहां तक पहुंचने के लिए अभी इन योगियों और तपस्वियों को सैकड़ों वर्ष लग जाएगे, आप निश्चय ही अद्वितीय **"सिद्धि पुरुष"** हैं, तभी तो हजारों-हजारों शक्तियां और सिद्धियां आपके सामने नृत्य करती रहती हैं। उच्चकोटि के वृद्ध योगी जन अपनी तपस्या बीच में ही खण्डित कर आपके चरणों की धूलि अपने सिर पर लगाने के लिए व्यग्र हो जाते हैं, जहां-जहां पर आपके चरण पड़ते हैं, वह स्थान हम सब योगियों के लिए तीर्थ-स्थल बन जाता है, और जब आपके पांवों के नीचे दबी हुई मिट्टी को हम चन्दन की तरह अपने ललाट पर लगाते हैं तो स्वतः सिद्धियां अपने आप हमारे हस्तगत हो जाती हैं ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

गुरौर्रूपं देव त्वव व च गुण गानं श्रिय इति
नमौ सिद्धयोगा सकल गुणगान त्वव इति ।
त्वदि कल्पवृक्षौ गुण ग्रहित नैत्र हिरणयो
र्त्वदै गानं पूर्ण गुरुवर भवेत्पूर्ण श्रियतः ॥

हे, परमपूज्य गुरुदेव ! सिद्ध योगा झील की प्रत्येक लहर आपके चरण प्रक्षालन के लिए व्यग्र है, सिद्ध योगा झील पर आपका नाम मधुरता के साथ स्पन्दित है, क्योंकि आपने इस निर्मल सिद्ध योगा झील को समस्त साधकों और योगियों के लिए व्यवहार करने योग्य बनाया, सिद्धाश्रम का पवन निरन्तर अपने होठों से आपका ही गुणगान करता रहता है, और जब वह कल्पवृक्ष के पेड़ों को स्पर्श करता हुआ बहता है तो ऐसा लगता है, कि जैसे कई देवदूत खड़े-खड़े आपके सम्मान में श्लोक उच्चरित कर रहे हों, यहां की माटी के प्रत्येक कण पर आपका गुणगान अंकित है, और यहां विचरण करते हुए हिरण-शावकों की आंखों में आपको निमंत्रण देने का मूक भाव है. यहां के पक्षियों की चहचहाहट में आपके ही गुणों का गान है, सही अर्थों में गुरूदेव आप सिद्धाश्रम की चेतना हैं, धड़कन हैं, और इसकी पूर्णता के आधार हैं ॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

महौ सिद्धाश्रम वै न च भवद रोग श्लथ इति
दिवौ सूर्य श्रेण लिखतु गुण पूर्णत्व इति च ।
शशिर्भू मौऽमृत्वं त्व व गुण इवौ प्राप्त इति च
"निखिलभूमौ" व्यक्तं भव च औत्सुक्य सुर वै ॥

सिद्धाश्रम में न सर्दी है, न गर्मी, न व्याकुलता है न चिन्ता, न ही व्यग्रता है, और यह सब आपके आने से ही सम्भव हो सका है, यहां के प्रभात के ललाट पर आपके हजारों-हजारों गुणों की प्रशस्तियां लिखी हुई साफ-साफ दिखाई देती हैं, मध्यान्ह को जब सूर्य की किरणें इस धरती से अठ-खेलियां करती हैं तब ऐसा लगता है कि ये किरणें आपको देख कर नृत्य कर रही हों, रात्रि में भगवान चन्द्र अपने पूर्ण यौवन के साथ उदय होकर पूरे सिद्धाश्रम को अपनी अमृत वर्षा से आच्छादित कर देते हैं, तब ऐसा लगता है कि जैसे आपकी आंखों से ही निकला हुआ अमृत हम सबको आप्लावित कर रहा हो, चिन्ता रहित, बाधा रहित और वृद्धता रहित यह भूमि सही अर्थों में "निखिलेश्वरानन्द-भूमि" कही जा सकती है, क्योंकि आपने इस सिद्धाश्रम को देवताओं के लिए भी ईर्ष्यायुक्त बना दिया है, और वे भी कुछ क्षणों के लिए ही सही, यहां आने के लिए व्यग्र और उत्सुक हैं ॥ ६ ॥

।। ७ ।।

भवोत्रूप भव्य रचयिति विधाता महकरौ
अहत् तेजस्वी श्रु भवति करुणानैंत्र इति वै ।
महेद् वक्ष रूपं जलधि व सतारं बल महो
अहो कामः विश्म श्रुत युत इति पूर्णदः महो ।।

हे, गुरुदेव ! आपका स्वरूप अपने आप में ही अत्यन्त भव्य और दिव्य है, विधाता ने स्वयं नवीन व्यवस्था से आपका निर्माण किया होगा, अत्यन्त तेजस्वी और भव्य मुखमण्डल, उस पर पैनी, सतर्क और सूक्ष्म दृष्टि सम्पन्न नेत्रों में अथाह करुणा का सागर, होठों पर देवताओं को भी लजाने वाली मुस्कराहट, भगवान विष्णु के पांचजन्य शंख की तरह ग्रीवा, उमड़ते हुए विशाल जलधि की तरह आपका भव्य और उन्नत वक्षस्थल, घुटनों को स्पर्श करते हुए हस्तीसुण्ड की तरह दो बलवान भुजाएं, और देवताओं की तरह लम्बा सौन्दर्यशाली अद्‌भुत व्यक्तित्व, जिसमें बल, इतना कि एक ठोकर से पेड़ को जड़ से उखाड़ कर फेंक दें, हाथों में क्षमता इतनी कि, दो व्याघ्रों को पीठ से पकड़ कर हवा में उछाल दें, और साहस इतना कि, जिसे सुन कर हिमालय भी दांतों तले उगली दबा ले, सौन्दर्य को देख कर कामदेव स्वयं यह कहने के लिए विवश हुआ है, कि आप सही अर्थों में पुरुषत्व हैं, आप सही अर्थों में सौन्दर्य हैं, आप सही अर्थों में पौरुष की पूर्णता हैं ।। ७ ।।

॥ ८ ॥

नवौढ़ा सौन्दर्य प्रभुच प्रतुरेक महदधि
महत् देव यक्ष सुरगण प्रहेचच्छ्रुक श्रुति।
यदिर्लेख्यं साक्ष्य भवत मह अश्रु प्रवमहो
र्व मूर्च्छत्वं वै न कमल भव शलष्म प्रचुरति॥

जिन सौन्दर्य और यौवन भार से लदी हुई अप्सराओं को देखने के लिए मनुष्य तो क्या, यक्ष गन्धर्व, किन्नर और देवता तक भी उत्सुक रहते हैं, वे अत्यन्त सलज्ज अप्सराएं जब हाथ बांधे उस रास्ते पर घन्टों खड़ी हुई दिखाई देती हैं, जिस रास्ते पर आप आने वाले हों, तो उन्हें देख कर मैं विस्मय से ओत-प्रोत हो जाता हूं कि अवश्य ही आपके व्यक्तित्व और सौन्दर्य में कुछ ऐसा है, जो उन्हें घंटों खड़ा रहने के लिए बाध्य कर देता है, और जब आप एक क्षण के लिए उस रास्ते से निकल जाते हैं, तो वे अप्सराएं उस स्थानों की धूलि अपनी मांग में भर कर जो कुछ नहीं कहना होता है, वह भी कह बैठती हैं, उनकी आंखें मूक निमन्त्रण का एक पुंज बन जाती हैं, उनका सारा शरीर आपकी सन्निधि प्राप्त करने का आकांक्षी हो जाता है, और जब वे आपके आने की प्रतीक्षा करती हुई आपको निमिष मात्र देख लेने पर प्रसन्नता, और जो आह्लाद उनके शरीर में व्याप्त होता है, वह छिपाये नहीं छिपता, पर आपके जाने के बाद वे जिस प्रकार से मुरझा जाती हैं, उसे देख कर कठोर हृदय व्यक्ति की आंखों में भी आंसू छलछला आते हैं, वास्तव में ही आपकी प्रतीक्षा, आपका आगमन और आपका प्रस्थान अपने आपमें इतिहास बन जाता है ॥ ८ ॥

॥ ६ ॥

गुरौवँ शान्त त्वं जलधि वपुषारा श्रयतु च
भवेत्क्रोधोत्रूपं प्रहर प्रव दावग्नि नयतः।
अहो सर्वोत्ज्ञानं करुण प्रभ स्नेह प्रचरुता
नहो सामर्थ्यं वै श्रियत निखिलेशम प्रणतु च॥

हे, प्रभु गुरूदेव ! जिस प्रकार समुद्र ऊपर से शान्त दिखाई देता है, मगर उसके अन्दर अत्यन्त हलचल और अग्नि होती है, ठीक उसी प्रकार ऊपर से आप अत्यन्त शान्त दिखाई देते हैं, परन्तु क्रोधित हो जाने पर भयंकर तूफान की तरह सबको कम्पायमान कर देते हैं, जब आप प्रसन्न होते हैं, तो अपना सब कुछ दे डालने में किंचित मात्र भी हिचक नहीं करते, परन्तु क्रोधित होने पर आप उसका सर्वनाश करने की भी सामर्थ्य रखते हैं, यही तो पौरुष का लक्षण है, यही तो धीरता और वीरता का सामंजस्य है, इसी को तो "पुरुषार्थ" कहा गया है, एक व्यक्तित्व में जितने गुण होने चाहिए, वे सभी गुण आपमें समावेश है, वीरता, धीरता, गंभीरता, सत्य, दया, ममता, करुणा, प्रेम, स्नेह, शत्रुमर्दन, प्रचण्डता, दुर्द्धर्षता और तूफानों से टक्कर लेने की क्षमता–ये सभी गुण स्वभावतः आपमें समाविष्ट हैं ॥ ६ ॥

॥ १० ॥

हरिस्ते शान्तत्वं भवत जन कल्याण इति वै
समस्त ब्रह्माण्ड ज्ञनद वद श्रेयं परित च ।
ऋषिर्वै हुंकार क्वच क्वद च शास्त्रार्थ करतुं
अहत् हुंकारैर्ण शलथ भवतु योगीर्न श्रियतः ॥

सिद्धाश्रम अपने आप में शान्त था और यहां स्थित तपस्वी आत्मकेन्द्रित । पहली बार आपने उनके ज्ञान को, उनके पौरुष को और उनके जीवन को ललकारने का दुस्साहस किया, पहली बार आपने उनके 'अहं' को चोट दी, पहली बार आपने इनको बताया, कि केवल एक स्थान पर बैठ कर साधना या तपस्या करने से कुछ नहीं होता, अपितु समाज में और जनमानस में जाकर उस ज्ञान के सूर्य की रश्मियां फैलाने में ही पूर्णता है, "स्व" को विकसित करने की अपेक्षा समस्त ब्रह्माण्ड को और उसमें स्थित प्राणियों को विकसित करने से ही पूर्णता और श्रेयता प्राप्त हो सकती है, पहली बार आपने विद्वाग्नि ऋषि के प्रचण्ड क्रोध का सामना किया और परास्त किया, पहली बार सुश्रवा, मुद्गल आदि ऋषियों से शास्त्रार्थ कर उनके अहं को परास्त किया, और पहली बार आपने सिद्धाश्रम में डंके की चोट पर ऐलान किया, कि जिस किसी में भी अहं हो, और जो भी योगी, सन्यासी, सिद्ध किसी भी स्थान पर किसी भी विषय पर कभी भी शास्त्रार्थ करना चाहे, मैं तैयार हूं, पर आपकी इस हुंकार ने उनको अपनी-अपनी कुटियाओं में दुबक कर बैठने के लिए विवश कर दिया ॥ १० ॥

॥ ११ ॥

महो सिद्धायोगा न च भवत सौख्यं पर परं
वदेत् व्याघ्र रूपं स्वति निवसतः पूर्ण मदनै।
अहो क्रोधाग्निर्वै प्रखर हिम शैले वदतु न
नवोढ़ा सौन्दर्य सिद जलधि हास्य व इद नः॥

आज सिद्धयोगा झील का जो सौन्दर्य है, वह आपकी वजह से ही है, अन्यथा यह झील उदास और बेचैन दृष्टि से ताकती रहती थी क्योंकि सिद्ध योगा झील में कोई पांव तक नहीं रख सकता था, यह सिद्धाश्रम की परम्परा में था, परन्तु आप तो व्यर्थ की परम्पराओं को तोड़ने वाले व्यक्तित्व हैं, आपने सिंह गर्जना की, कि कोई भी साधक या साधिका, सन्यासी या सन्यासिनी, योगी या योगिनी सिद्धयोगा झील में स्नान कर सकती है, चुहल, हंसी और किलोल कर सकती है, तथा स्फटिक नौका पर विचरण कर सकती है, और जब ऐसा हुआ तो पूरे सिद्धाश्रम में एक हलचल, एक तूफान सा व्याप्त हो गया, पर आप अपने निश्चय पर अडिग थे, सैकड़ों ऋषियों और योगियों की क्रोधाग्नि का सामना करते हुए आपने जो कहा-उसे मान्यता दी, और तभी तो आज सिद्धयोगा झील हर क्षण मुस्कराहट समेटे हुए नववधु की तरह सुन्दरता से ओत-प्रोत दिखाई देती है, आपकी वजह से ही तो उसका पूर्ण शृंगार हुआ है॥ ११॥

॥ १२ ॥

भवेत्सर्व सिद्ध न च वदति पूर्व स्व इति च
महोत् शान्तं क्षेम भवत श्मशान प्रवद वः ।
कठोत्रूपं सर्व भ्रकुटि कुटिला नृत्य गति वै
नवोढ़ा सौन्दर्य स्मरति सुर नन्दन इति ॥

आपके आने से पूर्व सिद्धाश्रम एक ठूंठ की तरह निष्प्राण सा होकर रह गया था, इसके सम्मेलन और इसके प्रस्ताव रूखे-सूखे और अर्थहीन बन गये थे, यहां शान्ति तो थी, पर वह मरघट की तरह की शान्ति थी, जहां सिद्धयोगा झील में कोई स्नान नहीं कर सकता था, उत्सवों में नृत्य की मनाही थी, अप्सराओं का प्रवेश वर्जित था, और सौन्दर्य की झंकार का प्रवेश निषेध था, आपने पहली बार इस व्यवस्था के विरोध में अपने आपको खड़ा किया, पहली बार सिद्धयोगा झील को सुन्दर वधु बना दिया, पहली बार उत्सवों में अप्सराओं के नृत्य को मान्यता दी, और योगियों तथा तपस्विनियों को परस्पर बात करने की छूट दी, पहली बार आपने इस सिद्धाश्रम में एक मस्ती, एक तरंग और एक जीवन्तता दी, जिससे कि यह मरघट की शान्ति सौन्दर्य की सुगन्ध से ओत-प्रोत होकर नृत्य की झंकार से मधुरित हो सका, वास्तव में आपके द्वारा निर्मित सिद्धाश्रम ही इन्द्र के नन्दन कानन से श्रेष्ठ और अद्वितीय बन सका है ॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

प्रबुद्ध 'नि' नित्यं भवति निर्वाण इति च
'खि' पूर्ण त्वं स्नेहं द्युति भवत ब्रह्माण्ड महति।
'ल' श्रेयत्वंश्रीयं मम मधुर पूर्ण सह द्युति
निखिल त्वं रूपं भवति दिव दिव्यं देह वद च॥

हे, गुरूदेव ! आपका नाम सम्पूर्ण चेतना को अपने आप में समेटे हुए है, " नि " अक्षर का अर्थ " निर्माण " अर्थात् पूर्ण गृहस्थ-सुख, और 'निर्वाण" अर्थात् वैराग्य की चेतना को लिए हुए है, आपमें दोनों ही तत्व सम्पूर्णता के साथ समावेश हैं, एक तरफ जहां आपने गृहस्थ जीवन को पूर्णता दी, वहीं दूसरी ओर आपके द्वारा सन्यास जीवन को भी भव्यता मिली, " खि " समस्त ब्रह्माण्ड का सूचक है और यह इस बात का द्योतक है, कि आपकी गति ब्रह्माण्ड के समस्त लोकों में अबाध गति से संचारित है, आप जब चाहे जिस किसी भी ग्रह पर जाकर अपने शिष्यों को मार्गदर्शन कर पुनः पृथ्वी ग्रह पर लौट आते हैं, " ल " अक्षर पूर्णता का सूचक है, और आप सही अर्थों में सम्पूर्णता के आधार स्तम्भ हैं, ज्ञान, वैराग्य, चेतना, बुद्धि, हास्य, सन्यास, दर्शन मीमांसा, वेद, पुराण आदि समस्त ज्ञान और तथ्यों में आप सम्पूर्णता लिए हुए हैं, इसलिए आपका नाम ही अपने आप में सम्पूर्णता का सूचक है ॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

हिमौ पूर्ण कृत्यं वसन भव जन्मौ च नितिरः
भवेत्भृख्यं मेरू शिखिर इति वेगे न वति च।
गिरेत्गह्वारं च भवति भव वेदज्ञ श्रुति च
दिवौ दिव्यौ रूपं वनद् वन औषध परि वः ॥

हे, प्रभु ! यह समस्त हिमालय आपका जन्म-जन्म तक ऋणी रहेगा, क्योंकि आपने अपने पैरों से इस हिमालय को, एक छोर से दूसरे छोर तक नापा है, और इसमें निहित शक्तियां, इसमें निहित वनौषधियां और इसमें स्थित योगियों को ढूंढ निकाला है, यही नहीं अपितु पुराणों में जिन गुफाओं, कन्दराओं और नदियों के स्रोतों का उल्लेख मिलता है, आपने सैकड़ों वर्षों बाद उन स्रोतों को ढूंढ निकाला, और विश्व से परिचित कराया, आयुर्वेद एक प्रकार से समाप्त प्रायः हो गया था, आपने धन्वन्तरी से लगा कर अद्यतन आयुर्वेद से संबन्धित ग्रन्थों में निहित ज्ञान और चेतना की दिव्योषधियों को ढूंढ निकाला, और विश्व के सामने रखा, आपकी वजह से ही यह हिमालय ज्यादा सुन्दर, ज्यादा प्राणवान, और ज्यादा चेतनायुक्त बन सका है ॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

न शक्यत्वं हेमं गिर वन नदौ गह्वर इति
न वार्धक्यं शक्त्यं गतिर नभ वायुर्गति नव।
जलौ मार्ग श्रेयं न च भवति शक्यं नर सदौ
समस्तं ब्रह्माण्डं नमति निखिल नृं मुहु मुहु ॥

हे, प्रभु ! मैंने आपकी साधनाओं की अनन्त संभावनाओं को अपनी आंखों से सफल - असफल समझने का प्रयास किया है, हिमालय की एक पर्वत शृंखला से दूसरी पर्वत शृंखला पर, बर्फ से ढकी हुई एक चोटी से दूसरी चोटी तक आप जिस विद्युत गति से पहुंच जाते हैं, और बर्फ, नदी, नाले, प्रवाह और वातावरण आपके लिए बाधक नहीं बनते, उसे मैंने अपनी आंखों से देखा है, वायु मार्ग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर सहज गति से जाते हुए भी मैंने आपको अनुभव किया है, यही नहीं अपितु जल पर आप उसी ढंग से चल लेते हैं, जिस प्रकार से एक सामान्य मनुष्य जमीन पर चलता है, यह सब आपकी सिद्धियों का आधार है, आपने वायु, जल, अग्नि, यम, वरुण, कुबेर आदि से संबन्धित सिद्धियों को हस्तगत कर हम लोगों के सामने एक जीवित साक्ष्य उपस्थित किया है, हम आपको बार-बार प्रणाम करते हैं ॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

अजस्त्र गंगेय भवत नद सिद्धि वैतुरिनः
सहौ हिंस्त्र व्याघ्र प्रबल प्रतड़ापि गति मति ।
मनौ गंगोद्भावी भंवति कथ मानः सर इति
गतौ पूर्ण रूपं प्रकृति नहि शक्य गति मति ॥

मैंने आपको गंगा के भीषण प्रवाह में इक्कीस दिनों तक अबाध गति से खड़े होकर साधना करते हुए देखा है, व्यास नदी की उत्ताल तरंगों और लहरों के बीच मस्ती के साथ तैरते हुए, और उस पार जाते हुए देखा है, वर्षा को मनचाहे स्थान पर बरसा देने की क्षमता मैंने अनुभव की है, और मनाली के जंगलों में दो जंगली भैंसों को अपने हाथों से पकड़ कर दूर फेंकते हुए प्रत्यक्षतः अनुभव किया है, यह सब सामान्य मनुष्य के वश की बात नहीं है, मैंने आपको गंगोत्री से आगे गौमुख के रास्ते कई बार मानसरोवर तक जाते और वहां से आते हुए देखा है, और मानसरोवर को गहराई के साथ नापते हुए आपने यह बता दिया है, कि समुद्र या नदी की गहराई आपके सामने कोई मायने नहीं रखती, कैलाश पर्वत की परिक्रमा कर भगवान शिव को साक्षात् अपने सामने प्रत्यक्ष किया है, और मानसरोवर के मध्य में कूद कर उस स्थान का पता लगाया है, जिसे **"गुप्त-सिद्धाश्रम"** कहा जाता है, वास्तव में ही आपकी गति अबाध है, जिसे प्रकृति नहीं रोक सकती, आप प्रकृति के पूर्ण स्वामी हैं, और आपके इंगित पर ही प्रकृति नृत्य करती हुई सी प्रतीत होती है ॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

क्षणौ यावत्रूपं कठिन ऋषिभिर्मौ क्षद श्रुति
महोत्योगा निद्रा विचरति इहै पूर्णद मिदं ।
अलौ अन्या ग्रत्वा ग्रह परिभव शिष्यद परं
महौ चिन्त्यत रूपं प्रभु मद गुरौ पूर्णद शिवं ॥

हे, प्रभु ! आपके जीवन का प्रत्येक क्षण अपने आप में मूल्यवान और महत्वपूर्ण है, प्रत्येक क्षण के साथ ऐतिहासिक घटनाएं जुड़ी हुई हैं, जो योगियों, सन्यासियों और साधकों को प्रेरणा देती रहती हैं, आपके जीवन का प्रत्येक क्षण कर्ममय है, कोई भी क्षण व्यर्थ नहीं जाता, आपके जीवन के प्रत्येक क्षण को मैंने साधनामय अनुभव किया है, जब लोग आपको निद्रा में सोते हुए अनुभव करते हैं, तब भी आप साधनारत होते हैं, और योग-निद्रा साधना के माध्यम से पृथ्वी ग्रह के अलावा अन्य ग्रहों पर विचरण करते रहते हैं, जाग्रतावस्था में आप बीच-बीच में सोचने लग जाते हैं, ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु उस समय भी भूमण्डल पर आपके शिष्यों या साधकों के साथ कोई न कोई घटना घटित हो रही होती है, और आप उसकी अनुकूलता के लिए वहां उपस्थित होकर प्रयत्न करते हुए प्रतीत होते हैं, वास्तव में ही आपकी माया को हम पहिचान भी क्या सकेंगे ? ॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

स्वयं सिद्धौ योग भवद श्रुति वेद क्षरण तथौ
शिवौ साक्षात् रूपं कहि ज्ञनति ज्ञानं श्रुति महः।
सः तत्वज्ञ चैत्य शिवमय भवं वेद श्रुतिर्धि
क्व कर्म देवोपि त्व व च सिद्धि परिश्रुतः ॥

हे, गुरूदेव ! यों तो इस पृथ्वी पर और सिद्धाश्रम में सैकड़ों योगी - यति, साधु - सन्यासी प्रगट हुए हैं, और अपनी साधना के बल पर कई अज्ञात रहस्यों को ज्ञात किया है, परन्तु आपको तो ये साधनाएं स्वतः सिद्ध हैं, इसके लिए आपको किसी प्रकार का कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता, सही अर्थों में देखा जाय तो आप भगवान शिव के साक्षात् स्वरूप हैं, जिसने मनुष्य देह धारण की है, हम अल्पज्ञ, बुद्धि के अजीर्ण से ग्रस्त इन चर्म-चक्षुओं से आपके चिन्तन को, और आपके स्वरूप को समझने में असमर्थ हैं, परन्तु जो "तत्व ज्ञाता" है, जिसने तत्व की साधना कर रखी है, वह आपके इस शिव-मय स्वरूप को भव्यता के साथ देख सकता है, और जब साक्षात् शिव हमारे सामने उपस्थित हों, तो अन्य देवताओं की साधना करने से क्या लाभ? ऐसे वरदायक, समस्त सिद्धियों के ज्ञाता, और पूर्णता युक्त शिव स्वरूप- आप गुरूदेव को मैं सम्पूर्ण भक्ति, श्रद्धा, और हृदय, से प्रणाम करता हूं ॥ १८ ॥

॥ १६ ॥

महत्‌रूपं ज्ञेय भव च मह प्रेम श्रिय सहौ
भवत्कर्म कृष्ण परम प्रिय प्रीतिनव श्रुतः ।
ग्रतौ पूर्ण गीतां सह च गुरूवैर्ण श्रिय मिदं
स पूर्णत्वं पूर्ण कलतः मह षोर्डाशत कथः ॥

यह मैं ही नहीं, अपितु पूरा सिद्धाश्रम जानता है, कि आपने ही एक अंश से श्रीकृष्ण के रूप में जन्म ले कर कर्मयोग को पुनः पृथ्वी पर स्थापित किया, आप में और श्रीकृष्ण के चिन्तन, कार्य और भाव-भूमि में अद्‌भुत साम्य है, दूसरे शब्दों में कहा जाय तो आप दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं है, वे भी प्रेममय थे, और आपने भी कर्म क्षेत्र में प्रेम की पवित्र धारा को प्रवहित किया, वे कूटनीतिज्ञ थे, और परिस्थितियों के अनुसार सम्पूर्ण जन समुदाय को अपने पीछे चलने के लिए विवश किया, और जीवन के जितने भी आयाम थे, उन सभी आयामों को उन्होंने पूर्णता के साथ ग्रहण किया, वे गृहस्थ थे, प्रेमी थे, योगी थे, सन्यासी थे, जगद्‌गुरू थे, गीता जैसे ग्रन्थ के रचयिता थे, और आनन्दप्रद थे, आप के जीवन को यदि सूक्ष्मता से आंका जाय, तो ये सभी तत्व पूर्णता के साथ आप में समावेश हैं, ऐसा ही प्रतीत होता है, कि उसी अंश ने पुनः आपके रूप में जन्म लेकर इतिहास में एक नया अध्याय खोलने का प्रयास किया है, मैं आपको, इस मोहिनी मूर्ति और आनन्द मय स्वरूप को भक्ति भाव से प्रणाम करता हूं ॥ १६ ॥

॥ २० ॥

महौ पूर्णं ज्ञान सहत शिव शांकर्य श्रुति च
स्व अंशत्वं देवं प्रहर मति ज्ञानर्णव इति ।
महौत्व्याघ्र रूपं गज गणद यूथ सहितरौ
स्वधन्यत्व पूर्ण परम प्रिय पूर्णं त्व निखिलौ ॥

हे, गुरूदेव ! अब इसमें तो कोई संदेह नहीं रह गया, कि आप भगवत्पाद शंकराचार्य के मूल स्वरूप हैं, जिस अंश से शंकराचार्य ने जन्म लिया, वही अंश आपमें अवतरित हुआ है, आपने भी शंकराचार्य की तरह योग, वेद, उपनिषद, वेदान्त आदि सभी तत्वों का पूर्णता के साथ अध्ययन किया है, और जब आप धारा प्रवाह बोलते हैं, और सामने वाले विद्वानों के तर्कों का खंडन करते हैं, तो देखते ही बनता है, आपके सामने वे सभी विद्वान उसी प्रकार से भाग जाते हैं, जिस प्रकार से विकराल व्याघ्र को आते देख कर हाथियों का झुण्ड तितर - बितर हो जाता है, आपकी गर्जना से उनके चित्त में व्याकुलता बढ़ जाती है, और वे स्वयं परास्त होकर क्षमा मुद्रा में आ जाते हैं, वास्तव में ही आप ने पृथ्वी पर अवतरित हो कर अकेले व्यक्तित्व ने जितना कार्य किया है, उतना तो हजारों योगी या सन्यासी मिल कर भी नहीं कर पाते ॥ २० ॥

॥ २१ ॥

महोत्कांचं रूपं विवशति भवद् भू प्रतिरतं
दिवे नित्यं चिन्त्यं विवशत महोत्स्पर्श क्रियते।
नवोन्मेषं रूपं पदम पर गंध श्रुवयति
भवेत्पूर्ण पुण्यं पुरुषमपरोत्त भव नितिः ॥

हे, गुरुदेव ! आपका सारा शरीर देवताओं की तरह सुन्दर, और आकर्षक है, कामदेव के समान पुष्ट और यौवन-प्रदायक है, आपको कोई भी स्त्री या पुरुष देखता है, तो टकटकी बांध कर देखने के लिए विवश हो जाता है, आपके विशाल और चौड़े स्कन्ध, हिमालय का स्मरण दिलाते हैं, और वक्ष-स्थल ऐसा प्रतीत होता है, कि मानो तूफान से भरा हुआ समुद्र उमड़ रहा हो, सारा शरीर एक विशेष ढांचे में ढला हुआ अत्यन्त सम्मोहक और आकर्षक प्रतीत होता है, जैसे कि उसमें चुम्बकीय आकर्षण हो, प्रत्येक स्त्री और पुरुष समीप आने, और निकट जाने की इच्छा मन में रखे हुए विवश से खड़े रहते हैं, वास्तव में ही आपके इस दिव्य देह से जो "पद्म गन्ध" और "अष्ट गन्ध" प्रवहित होती है, वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ और अपने आप में सोलह कलाओं से पूर्णता युक्त पुरुषोत्तम का प्रतीक है, मैं आप को भक्ति भाव से प्रणाम करता हूं ॥ २१ ॥

॥ २२ ॥

महोत्सवं रूपं स्मितमिव इदौ श्रेय प्रिय च
सहस्र स्वर्गं च निवसति क्रिय पूर्ण इति वै।
स्मित हास्य श्रेय श्रवन वदनं पूर्ण रत नै
वहं पूर्ण श्रेय भवत भव योगी मह श्रियै ॥

हे, गुरुदेव ! हे प्रभु !! यदि आप मेरे कथन को क्षमा करें, तो मैं यह कहता हूं, कि आपके सारे शरीर में आपका चेहरा और आपकी मुस्कराहट अपने आपमें अत्यन्त सम्मोहक और हृदय ग्राही है, आपका चौड़ा ललाट, और उस पर उठी हुई तीन रेखाएं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रतिनिधित्व करती हैं, और जब आप किसी बात पर कुछ क्षणों के लिए मुस्कराते हैं, तो उस समय उस एक मुस्कराहट पर हजार-हजार स्वर्ग न्यौछावर करने को जी चाहता है, आपके प्रति कितना ही आक्रोश या कितना ही तनाव हो, हम जब आपकी एक मुस्कराहट देख लेते हैं, तो सारा आक्रोश धुल जाता है, और मन-मयूर नाचने लग जाता है, वास्तव में ही आपकी थोड़े से तिरछे होठ करके मुस्कराने की कला अपने आप में अद्वितीय है, जिसे देखकर यदि कोई सम्मोहित हो जाय, तो इसमें उसका क्या दोष ? आपके इस आनन्दयुक्त मुखमण्डल को, और उसमें स्थित मुस्कराहट को देखने के लिए ऊंचे से ऊंचा योगी भी तरसता रहता है, और उस क्षण की प्रतीक्षा करता है, जब उसके जीवन में ऐसे क्षण प्राप्त हों ॥ २२ ॥

॥ २३ ॥

त्वहं प्रेमत्रूपं परम मधुर श्रेय इति च
न सक्यत्वं ज्ञानं श्रिय प्रिय इति वैं श्रियमहो।
त्व संसर्ग देह भवत परमोच्च सुख वदै
द्वै किन्नं स्वर्ग त्वं सुर वदन प्या तृप्त इति नः ॥

हे, गुरूदेव ! सिद्धाश्रम के योगियों ने जो आप को **"प्रेममय"** शब्द से सम्बोधित किया है, वह वास्तव में ही सत्य है, क्योंकि आपका सारा शरीर प्रेममय है, आपने अपने जीवन में प्रेम को ही बांटा है, और पृथ्वी को ज्यादा प्रसन्न, ज्यादा आनन्दयुक्त बनाने का प्रयास किया है, जब हम उच्चकोटि के सन्यासी आपके विशुद्ध और निश्छल प्रेम को भली भांति नहीं समझ सकते, तो सामान्य सांसारिक व्यक्ति यदि उस प्रेम को वासना, या तुच्छता समझ ले, तो इसमें उनका क्या दोष, क्योंकि जो स्वयं जैसा होता है, दूसरों को भी वैसा ही समझता है, आप द्वारा प्रेम पाना और आपकी सामीप्यता प्राप्त हो जाना तो कई - कई जीवन का सौभाग्य है, वास्तव में ही वे धन्य हैं, जिन्होंने आपके मन और शरीर की समीपता प्राप्त की है, सिद्धाश्रम और देवलोक की अप्सराएं, किन्नरियां, गन्धर्व, और स्वयं ऋषि आपके शरीर का स्पर्श, सामीप्यता, साहचर्य और संसर्ग-सुख प्राप्त करने के लिए अभिलषित रहते हैं, तो फिर सामान्य सांसारिक व्यक्ति ऐसा चिन्तन रखें, तो इसमें आश्चर्य क्या ? ॥ २३ ॥

॥ २४ ॥

न सक्यत्वं ज्ञानं न च विधुर प्रेम श्रिय महो
न ज्ञानत्वं रूपं नहि वदति पार्थक्य श्रियते ।
परं सौभाग्यं वै सहत सहचर्य विधुरवै
दिवं देहं नित्यं भव मधुर स्वर्ग मह सहौ ॥

हे, गुरूदेव ! मुझे आश्चर्य तो तब होता है, जब आपके साथ रहकर भी ये योगीजन आपकी गहराई और सूक्ष्मता को नहीं समझ पाते, वे निरन्तर आपके पदचिन्हों पर चल कर भी आपकी पूर्णता को अनुभव नहीं कर पाते, वे तभी ऐसा अनुभव कर सकते हैं, जब तत्व ज्ञान से अनुप्रेरित हों, एक सामान्य मनुष्य पूरे समुद्र को नहीं नाप सकता, एक सामान्य पक्षी पूरे नभमण्डल में विचरण नहीं कर सकता, ठीक उसी प्रकार एक सामान्य सन्यासी या योगी आपकी गहराई या आपकी उच्चता को नहीं परख सकता, इसके लिए तो उसे कई-कई जन्म लेना पड़ेगा, तब जाकर वह आपके ज्ञान और चिन्तन का कुछ हिस्सा समझ सकेगा, वास्तव में ही वे नर-नारी सौभाग्यशाली हैं, जिन्हें आपकी समीपता और आपका साहचर्य प्राप्त है, वास्तव में ही वे लोग संसार में सर्वाधिक भाग्यशाली हैं, जो आपकी सेवा में रत हैं, या आपने उनकी सेवा स्वीकार की है ॥ २४ ॥

॥ २५ ॥

भवेत्साश्चर्य त्वं विचरति भ्रमेत व्यर्थ इद रं
महाकाली लक्ष्मीं भवत भव देवी वर वदै।
शिवौ साक्षात्रूपं जगतपति ब्रह्मा सह शिवौ
त्वद ध्यानं ज्ञानं परिमद परिपूर्ण इति च ॥

हे, प्रभु ! मुझे आश्चर्य तो उस समय होता है, जब आपके सम्पर्क में आने के बाद भी लोग किसी देवी देवता की साधना में भटकते हैं, सम्पूर्ण देवी देवताओं का निवास आपके शरीर में पूर्ण रूप से विद्यमान है, आप में एक साथ महाकाली, महालक्ष्मी, और महासरस्वती का सम्पूर्ण रूप से समावेश है, यदि सूक्ष्मता से ध्यान मग्न होकर देखें, तो आपके ललाट पर स्वयं भगवान शिव साक्षात् स्वरूप में दिखाई दे जाते हैं, जिन्होंने आपके अनावृत्त वक्ष-स्थल को देखा है, उन्हें सम्पूर्ण स्वरूप के साथ भगवान विष्णु के दर्शन हुए हैं, जिन्होंने आपको साधना करते हुए आपके कटि भाग को देखा है, तो उन्हें नाभि प्रदेश में स्वयं ब्रह्मा कमल दल पर विराजमान दिखाई दिये हैं, और मैं स्वयं इसका साक्षी हूं, इन्द्र, वरुण, कुबेर, दिक्पाल, यक्ष और सभी देवियां आपके शरीर में सम्पूर्णता के साथ पूर्ण विग्रह के साथ समाविष्ट हैं, तो फिर अलग-अलग देवताओं की उपासना या पूजा का क्या अर्थ ? आपका ध्यान आपका पूजन, और आपका चिन्तन ही सम्पूर्ण देवताओं का पूजन और उनकी सिद्धि है ॥ २५ ॥

॥ २६ ॥

न हं वासं नित्यं त्वद वरद लक्ष्मी शतमिदं
त्व पूर्ण त्वं रूपं षट सहस रूपं पर चिति।
भवत्रूपं नित्यं श्रिय प्रिय महो पूर्ण इति च
त्वमूढ़ त्वं व्यर्थं जपति दिव मंत्र मह इदं ॥

हे, गुरूदेव ! जब ये मूढ़ सांसारिक साधक आपसे लक्ष्मी साधना प्राप्त करने की इच्छा प्रगट करते हैं, तो बरबस मुझे हंसी आ जाती है, और उनकी नादानी पर तरस भी आता है, लक्ष्मी तो अपनी सम्पूर्ण सोलह कलाओं को लेकर आपके शरीर में साक्षात् सशरीर विद्यमान है, महर्षि मुद्गल ने स्पष्ट रूप से कहा है, कि **"स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी"** के शरीर में सोलह कला पूर्ण लक्ष्मी पूर्णता के साथ विद्यमान है, इस ऋषि की वाणी मिथ्या कैसे हो सकती है? देह, सुख, स्वास्थ्य, धन, पृथ्वी-सुख, भवन, कीर्ति-लक्ष्मी, आयु-लक्ष्मी, यश-लक्ष्मी, पुत्र-पौत्र, वाहन, सम्पूर्णता, ऐश्वर्य, भोग और दीर्घायु - लक्ष्मी अपनी समस्त कलाओं के साथ जब आपके शरीर में पूर्णता के साथ विद्यमान है, तो ये मूढ़ अलग-अलग लक्ष्मी के मंत्र जप कर अपना जीवन और समय व्यर्थ में क्यों बरबाद करते हैं? आपकी साधना ही तो सम्पूर्ण लक्ष्मी की साधना है ॥ २६ ॥

॥ २७ ॥

भवेत्क्रोधत्तरूपं भवत् महकाल इति वदै
त्व भस्म त्व रौद्र न च तवद नित्यं सह इति।
त्वयि भस्म क्रोध न च वदत योगी यति मह
महाकाली रूपं भवत भव रुद्र त्व व सहि ॥

हे प्रभु ! हे, गुरूदेव !! मैंने ही नहीं अपितु सिद्धाश्रम के कई योगियों ने आपके रौद्र रूप को देखा है, और जब आप क्रोधित होते हैं, तो सारा सिद्धाश्रम सन्न सा रह जाता है, आपकी आंखों से क्रोधाग्नि बरसने लग जाती है, और निश्चय ही यदि उस क्षण कोई आपके सामने पड़ जाय, तो उसका भस्म होना निश्चित है, आपके स्वरूप को देख कर ऐसा प्रतीत होता है, कि आपका सम्पूर्ण शरीर महाकाली का आवास स्थान है, उसके सामने जब वेगवान दैत्य भी नहीं टिक पाते, उच्चकोटि के सन्यासी और योगी भी पीपल के पत्तों की भांति उड़ जाते हैं, तब सामान्य शत्रु तो आपके क्रोध का सामना कर ही कैसे सकते हैं ? यह अलग बात है, कि आपका ऐसा स्वरूप भी अपने आप में अत्यन्त सम्मोहक है, मैं स्वयं ऐसे भीषण उग्र तेजस्वी और प्रचण्ड स्वरूप को देख कर पिघलने लग गया था, और ऐसा लगने लगा था कि जैसे सारा सिद्धाश्रम आपके क्रोध की आग में झुलस रहा हो, जब आप साक्षात् रूप में विद्यमान हैं, तो महाकाली के अन्य रूपों की साधना अपने आप में क्या महत्व रखती है ? ॥ २७ ॥

॥ २८ ॥

भवेत्सर्व सौख्य वर वरद कंठं सह सति
महादेवी नित्य भजति भव वेद श्रुति मति।
अजस्त्र निर्बाध सह रुचिर काट्य सह नति
महाकाली लक्ष्मी वरद नित्यं श्रिय इदं ॥

हे, गुरुदेव ! मैंने आपके कई रूपों को निकटता से देखा है, आप सरस्वती के साक्षात् सशरीर विग्रह हैं, संसार में जितने भी वेद, पुराण, उपनिषद, मीमांसा, दर्शन और तत्व हैं, वे सभी आप के कंठ में विद्यमान हैं, अब यह स्पष्ट हो चुका है, कि स्वयं वाग्देवी आपके कंठ में स्थित है, और जब आप एक क्षण के लिए ध्यान-मग्न हो कर बोलना प्रारम्भ करते हैं, तो आप कठिन से कठिन और दुरूह से दुरूह विषय पर भी अनवरत अजस्त्र गति से बोलते चले जाते हैं, और आपका प्रत्येक तर्क पूर्ण रूप से सटीक और अकाट्य होता है, इन लोगों को वेद पुराण उपनिषद पढ़ने की क्या आवश्यकता है ? यदि मात्र आपकी आराधना या साधना से ही यह सब कुछ सहज ही प्राप्त हो जाय, आप में महाकाली, महालक्ष्मी, महा सरस्वती सम्पूर्णता के साथ विद्यमान हैं, ऐसे अनिवर्चनीय स्वरूप को मैं भक्ति भाव से प्रणाम करता हूं ॥ २८ ॥

॥ २६ ॥

महोत्रूपं ज्ञानं जगदगुरू श्रेष्ठं श्रित सहौ
महत् सत चित रूपं परम विरल शिष्य इति च।
न सक्यत्वं ज्ञानं नहि वदति ब्रह्माण्ड निखिलं
समस्तं श्रेयत्वं भवत भव वेद सद गुरौ ॥

हे प्राणस्वरूप ! गुरूदेव परमहंस स्वामी सच्चिदानन्द जी ने आप जैसे शिष्य को प्राप्त कर सौभाग्य अर्जित किया है, उन्होने स्वयं कहा है, कि हजारों-हजारों वर्षों बाद ऐसा व्यक्तित्व पृथ्वी ग्रह पर उपस्थित होता है, उन्होंने अपने प्रवचन में आपके बारे में बोलते हुए कहा था कि जिस दिन विश्व इस "निखिल" को समझ लेगा उस दिन पूरा विश्व अध्यात्म के पथ पर गतिशील होकर पूर्णता को प्राप्त कर लेगा. उन्होंने उपस्थित सभी ऋषियों और योगियों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि सैकड़ों-सैकड़ों साधनाओं को करने की अपेक्षा यदि निखिल के जीवन के एक-एक पन्ने का अध्ययन किया जाय तो उसके जीवन का प्रत्येक क्षण अपने आप में सम्पूर्ण साधना है. उन्होंने कहा था, कि अब मुझे विश्वास है कि पृथ्वी तल पर वेद, पुराण, उपनिषद और अध्यात्म अपने मूल स्वरूप में जीवित और विद्यमान रहेंगे, उनको और हम सब सिद्धाश्रम के योगियों को आप जैसी विभूति पर गर्व है, और समस्त ब्रह्माण्ड हमारे इस गर्व में भागीदार है ॥ २६ ॥

॥ ३० ॥

न ब्रह्मत्वं ज्ञानं न च भवतिशक्यं तत्वदः वदै
न जानन्ति रूपं क्वच भवति शक्य त्व इति च
महो रूपं पुण्यं शत सहस्त्र कालं च निखिलं
अहो श्रेय प्रेय भवति भव वाक् कौस्तुभ मणि॥

हे गुरुदेव ! जब हम लोग भी सैकड़ों-सैकड़ों साधनाएं ब्रह्म ज्ञान तथा तत्व क्रिया करने के बाद भी आपको नहीं समझ सकते, तो फिर यदि सांसारिक प्राणी आपको नहीं पहचान सके, तो इसमें उनका क्या दोष ? यदि हम भी आपके मूल स्वरूप और चिन्तन को नहीं प्राप्त कर सके, तो सामान्य मनुष्यों की बिसात ही क्या, कि वे आप के इस उच्च स्वरूप को समझ सकें, वे तो आपको केवल हाड़-मांस से निर्मित मनुष्य ही समझते हैं, पर उसके भीतर जो तत्व है, जो चेतना है, जो श्रेयता है, जो सम्पूर्णता है, उसे किस प्रकार से समझ पाएंगे, हजारों-लाखों वर्षों बाद कोई ऐसी विभूति पृथ्वी तल पर अवतरित होती है, यदि समय रहते, ये लोग नहीं पहिचान पाये, या सत्संग, साहचर्य और सामीप्यता अनुभव नहीं कर पाये, तो एक बहुत बड़े सुख से, एक बहुत बड़ी सम्पदा से वंचित रह जाएंगे, यह तो ठीक वैसा ही होगा कि किसी भिखारी के हाथ अनायास कौस्तुभ मणि प्राप्त हो जाय, और वह उसे कांच का टुकड़ा समझ बैठे तो बाद में पछताने से क्या लाभ ? मैं इन सांसारिक प्राणियों की ऐसी ही गति समझ रहा हूं ॥ ३० ॥

॥ ३१ ॥

समस्तं प्रेम त्व स च महत देह वद वदं
परं सौभाग्यं च भवति नर देहत्व इति च ।
श्रियै प्रान्तं प्राप्यं चरण वद धूलिं वदति वै
ग्रहं प्राप्यं रूपं चरण तल सेवा मह महौ ॥

हे प्रभु ! ग्राप सम्पूर्ण रूप में प्रेममय हैं ग्रौर ग्रौर केवल उसी से सम्पर्क साहचर्य स्थापित करते हैं, जिनका पूर्व जन्म में ग्रापसे किसी न किसी प्रकार से सम्बन्ध, सम्पर्क रहा हो, या वे मनुष्य इस सौभाग्य को प्राप्त कर पाते हैं, जिन्होंने उच्चकोटि की साधनाएं सम्पन्न की हो, ग्रापके शरीर का स्पर्श प्राप्त करना ही जीवन का सौभाग्य है, ग्रापके पास कुछ क्षण व्यतीत करना ही, जीवन का परम पुण्य है, कुछ क्षणों के लिए ग्रापकी कृपा दृष्टि प्राप्त हो जाना ही जीवन की पूर्णता है, हजारों-हजारों सन्यासी केवल ग्रापकी चरण-धूलि प्राप्त करने के लिए व्यग्र हैं, फिर जो ग्रापके शरीर का स्पर्श ग्रौर सामीप्यता प्राप्त करते हैं, उनके भाग्य से ये ऋषि लोग तो क्या, देवता भी ईर्ष्या करते होंगे, सम्भवतः विधाता कोई न कोई सुयोग हमें प्रदान करेगी कि हम ग्रापके शरीर स्पर्श का सुख ग्रनुभव कर सकेंगे, मैं ऐसी ही कामना लेता हुग्रा, ग्रापसे वरदान प्राप्त करने का ग्रभीप्सित हूं कि मुझे जीवन में एक क्षण के लिए ही सही, पर ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो ॥ ३१ ॥

॥ ३२ ॥

अथौ नैत्रं पूर्ण करूण भव नित्य भव विधि
र्न क्षेयं क्षौभं च सकल भव स्नानं गगन गं।
समस्त सिद्धिर्वं सकल करुणार्द्र श्रिय महौ
समस्त प्रेयत्वं श्रिय मह सहौ पूर्ण इति च ॥

हे गुरूदेव ! आपके नेत्रों में अथाह करुणा व्याप्त है, जो आपकी इस कृपा दृष्टि से भीग जाता है, उसके जीवन के समस्त पाप समाप्त हो जाते हैं, जो पूर्ण श्रद्धा लेकर आपके चरण स्पर्श कर लेता है, उसको समस्त तीर्थों में स्नान करने के समान पुण्य प्राप्त होता है, जो एक बार आपके शरीर स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त कर लेता है, वह स्वर्ग से प्रवहित होने वाली देव गंगा में स्नान करने के समान पुण्य प्राप्त कर लेता है, जो एक बार पूर्ण चिन्तन युक्त आपके शरीर का ध्यान कर लेता है, उसे सिद्धियां स्वतः प्राप्त हो जाती हैं, जो आपके हाथों के तले अपने आपको समर्पित कर देता है, उसके जीवन में किसी प्रकार का कोई अभाव या न्यूनता रहती ही नहीं, आप तो वास्तव में ही क्षमा, दया, करुणा और प्रेम के साक्षात् विग्रह हैं आपको प्राप्त कर के ही जीवन के वास्तविक मूल्य को और जीवन की सम्पूर्णता को प्राप्त किया जा सकता है, हम समस्त ऋषि-गण अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं, कि आप हमारे बीच सशरीर विद्यमान हैं ॥ ३२ ॥

॥ ३३ ॥

परं प्राणस्स्नेहं विविध विध रूपं क्षण महौ
च गन्तव्यं देहं भवत भव सिन्धु गगनयौ ।
अनेकत्वं रूपं भवत भव शिष्य दुखद यो
असीम त्वं सिद्धिर्बपुत वपुराज्ञी गुरू वदौ ॥

हे तत्वज्ञानी ! हे प्राणस्वरूप गुरूदेव !! मैंने साधना के बल पर आपके कई स्वरूपों को भली भांति देखा है, आप एक शरीर से कई-कई शरीर धारण करने में समर्थ हैं. एक क्षण में जब आप एक स्थान पर दिखाई देते हैं तो उसी क्षण आप दूसरे स्थान पर भी पूर्ण स शरीर उपस्थित रहते हैं, आप वायुवेग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर तत्क्षण जाने में समर्थ हैं, मैंने आपको गृहस्थ शिष्यों के बीच प्रवचन करते हुए देखा है, तो उसी क्षण किसी पर्वत के शिखर पर सन्यासी शिष्यों को भी उपदेश देते हुए अनुभव किया है, और उसी एक क्षण में तीसरे स्वरूप में किसी शिष्य के दुःख को अपने ऊपर लेते हुए और उसे सान्त्वना देते हुए भी अनुभव किया है, वास्तव में ही आपके पास असीम सिद्धियां हैं, और विविध स्वरूपों की साधना है, हम तो आपके साधनाओं के भण्डार में से एक कण को भी प्राप्त कर लें, तो अद्वितीय हो सकते हैं, हम सब आपको श्रद्धायुक्त भक्तिभाव से प्रणाम करते हैं ॥ ३३ ॥

॥ ३४ ॥

अहौ रूपं नित्य वरद भव वज्र श्रिय महो
महोत्स्वर्ण देहं निवसति करूणार्थव इदं ।
समस्त दुखं च भवत भव सिन्धु अथ श्रियं
महात्रूपं ज्ञेय नहि मद न शक्यं स्वर स्वधं ॥

परम आदरणीय गुरूदेव ! आप सही अर्थों में पर दुःख कातर हैं, दूसरों के दुःखों को आप अपने ऊपर लेते हुए एक क्षण का भी बिलम्ब नहीं करते, आपका शरीर तो वज्र की तरह कठोर और स्वर्ण की तरह देदीप्यमान है, यम भी आप का क्या बिगाड़ सकते हैं, परन्तु आप बहुत अधिक भावुक और दूसरों के कष्ट को अपने ऊपर लेने में उतावले रहते हैं, इसीलिए आप दूसरों की बाधाओं और बीमारियों को अपने ऊपर लेते रहते हैं, जिसका प्रभाव आपके शरीर पर पड़ना स्वाभाविक है, आप दूसरों को चिन्ता मुक्त रखने और निरन्तर अपने शिष्यों का हित-चिन्तन करते रहते हैं, हर क्षण आपको अपने प्रत्येक शिष्य के सुख दुःख का भान रहता है, और प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से आप उसके कष्टों को दूर करते रहते हैं, वास्तव में ही वे नर सौभाग्यशाली हैं, जिन्होंने आपकी शिष्यता प्राप्त की है, और जो आपका शिष्य कहलाने का गौरव प्राप्त करते हैं, मैं भी आपका अकिंचन शिष्य हूं, आपकी कृपा दृष्टि मुझे भी प्राप्त हो, मैं ऐसी ही आकांक्षा रखता हूं ॥ ३४ ॥

॥ ३५ ॥

त्व शिष्यत्व ज्ञेय नहि वदति स्वर्ग रुचिरहो
न मोक्षत्वं काम्यं नहि भवति पूर्ण मह मिदं ।
इदं शक्यं क्षानं त्वव वरद रूप गुरू श्रिय
सहौ जानन्तीर्वा महद मह शिष्य त्व इति च॥

हे प्रभु ! हे गुरूदेव !! आध्यात्मिक और साधनात्मक क्षेत्र में सिद्धाश्रम से बड़ा पवित्र और दिव्य अन्य कोई स्थान नहीं है, निश्चय ही यहां सैकड़ों-हजारों वर्षों की आयु प्राप्त सन्यासी और योगी साधना रत हैं परन्तु इतने वर्षों तक साधना करने पर भी आपके समकक्ष पहुंचना असम्भव है, इन सभी योगियों और सन्यासियों के मन में एक ही भावना प्रबल रूप से विद्यमान है, कि भले ही कोई साधना पूर्ण हो या न हो, भले ही सिद्धियों में सफलता मिले या न मिले, पर एक बार जीवन में "परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी" का शिष्य बनने का गौरव प्राप्त हो जाय, तो यह हजारों वर्षों का जीवन धन्य हो जाय, यदि एक बार भी स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी अपने मुंह से हमें "शिष्य" कह दें, तो यह शरीर और यह जीवन पूर्णता प्राप्त कर ले, वास्तव में ही आपका शिष्य बनना करोड़ों साधनाएं करने की अपेक्षा श्रेयष्कर है ॥ ३५ ॥

॥ ३६ ॥

परम सिद्ध वँ न भव च परिपूर्णं श्रिय महो
न ज्ञानं वैराग्यं नहि भवतु शक्यं त्व मिति च ।
अहो तेजस्वं त्वां "निखिल" मह मंत्रर्थंव इति
वरं देयं शिष्यं इति च भव सिन्धुर्णं वद तै ॥

हे गुरुदेव ! भले ही मैंने तत्व सिद्धि को प्राप्त कर लिया हो, भले ही मैंने ब्रह्म ज्ञान को सिद्ध कर लिया हो, भले ही सिद्धाश्रम में मुझे श्रेष्ठ योगी और सन्यासी कहते हों, भले ही मैंने वाग्देवी को पूर्णता के साथ सिद्ध कर लिया हो, और भले ही मैंने समस्त देवी-देवताओं की सिद्धि प्राप्त कर ली हो, परन्तु फिर भी मैं आपके सामने तो एक छोटे से शिशु की तरह हूं. जिसे भली प्रकार से तुतलाना भी नहीं आता, भले ही मैंने समस्त ऐश्वर्य और सौभाग्य को प्राप्त कर लिया हो, परन्तु आप के सामने तो नग्न हूं. भले हो मैंने समस्त मन्त्रों को अपने कंठ में स्थापित कर लिया हो, परन्तु फिर भी मेरे लिए "निखिल" मन्त्र सर्वाधिक तेजस्वी, सर्वाधिक पवित्र, सर्वाधिक दिव्य है, मैं आपके कृपा कटाक्ष को प्राप्त करने का अभिलाषी हूं, आप मुझ पर करुणा की वर्षा करते हुए, एक बार आशीर्वाद भरा हुआ हाथ मेरे सिर पर रख कर अपने अधरों से मुझे "शिष्य" कह दें तो मैं इन समस्त साधनाओं, सिद्धियों से उसे ज्यादा श्रेयष्कर अनुभव करूंगा, हे प्रभु ! आप इतनी कृपा मुझ पर अवश्य करें ॥ ३६ ॥

॥ ३७ ॥

नहीं शक्यं पूर्ण त्वव चरण सेवा श्रिय महो
महत्माया कांचं न च वरद वेत्ता तत त्वयी ।
त्रयी सांख्यं वेद नहि शरत शक्यं भव निधौ
कृपा नाथं नाथ भवत भव देवं निखिल त्वं ॥

हे, गुरूदेव ! हम आपको समझ नहीं पाते, हम नहीं जानते कि आप बार-बार हम पर माया का आवरण क्यों डाल देते हैं ? हम ज्यों ही आप को समझने का थोड़ा बहुत प्रयास करते हैं, त्यों ही आप सहज हास्य या विनोद उत्पन्न कर माया का ऐसा आवरण बना देते हैं, कि हम पुनः आप को सामान्य मानव समझने की भूल कर बैठते हैं, पर जो तत्ववेत्ता हैं, जिन्होंने ब्रह्म-सिद्धि प्राप्त कर ली है, उन्होंने आपकी पूर्णता को और अद्वितीयता को समझ लिया है, कि आप सही अर्थों में वेद स्वरूप हैं, शास्त्रों के आधार हैं, ज्ञान के समुद्र हैं और चेतना के पुंज हैं, समस्त देवी-देवता आपके शरीर में ही पूर्णता के साथ समाहित हैं, और केवल आप की साधना, पूजा या सेवा करने से ही समस्त सिद्धियां स्वतः प्राप्त हो जाती हैं, आप कृपा कर हम पर माया का आवरण मत डालिए, जिससे कि हम आपके मूल विग्रह के दर्शन कर अपने जीवन को पूर्णता दे सकें ॥ ३७ ॥

॥ ३८ ॥

नहीं जानं ज्ञानं नहि भवति चेत्तं वरद त्वं
स सिद्धि व्याप्त्वं त्वां तव चरण सिद्धिर्गति मति।
तवः दृष्टिं क्षेपं सकल भव सिद्धिं वंपि श्रुति
महायोगं रूपं तव च भव स्पर्श सह महं ॥

हम सैकड़ों वर्षों की आयु प्राप्त योगी भी आपकी साधना और तपस्या के अंश को स्पर्श नहीं कर पाये हैं, जहां पर आपके चरण पड़ते हैं, वहां एक नयी सिद्धि स्वतः उत्पन्न हो जाती है, जिस ओर आपकी दृष्टि पड़ती है, वह पूर्ण सिद्धिदायक बन जाता है, जिसको आप अपनी तपस्या के अंश से हलका सा स्पर्श या शक्तिपात प्रदान कर देते हैं, वह सिद्ध योगी बन जाता है, जो सिद्धि सैकड़ों वर्षों की साधना करने से भी प्राप्त नहीं हो पाती, वह मात्र आपकी दृष्टि के शक्तिपात से सम्भव हो जाती है, आपके शरीर का स्पर्श, आपका साहचर्य और आपकी सेवा श्रेष्ठतम तपस्या और साधना है, आपके मुंह से निकली हुई आज्ञा ही मूल मन्त्र है, जिसका पालन करना ही साधना की पूर्णता और श्रेष्ठता है, आपका वरदायक स्पर्श जीवन की सिद्धियों का आधार है, मैं आपको भक्ति-भाव से प्रणाम करता हूं ॥ ३८ ॥

॥ ३९ ॥

अहो रूपं प्रेमं भवद भव वेद श्रिय महो
महत् शृगं श्रेयं सृजत भव ऽनंग वदतु न।
स सिद्ध योगिवँ सद गृह पति वँ तवच वै
महत् रूपं श्रेयं विविध भव योगी श्रिय दनः ॥

आपके विविध रूप हैं, और सभी रूप अपने आप में सम्पूर्णता लिए हुए हैं, जब आप बोलते हैं तो ऐसा लगता है, कि स्वयं वेद अपने मुंह से प्रवचन कर रहा हो, जब आप ध्यानस्थ होते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानों साक्षात् हिमालय साधनारत हो, जब आप साधना या प्रयोग सम्पन्न करवाते हैं, तो ऐसा लगता है कि जैसे स्वयं विश्वकर्मा सृजन कर रहे हों, जब आप प्रेममय होते हैं, तो निश्चय ही ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कामदेव स्वयं अठखेलियां कर रहा हो, जब आप परिवार में या गृहस्थ में होते हैं, तो कोई अनुमान ही नहीं लगा सकता, कि यह व्यक्ति अद्वितीय सिद्ध योगी है और जब आप साधनारत होते हैं, तो कोई सोच भी नहीं सकता कि आप गृहस्थ का निर्वाह भी भली प्रकार से संचालित कर सकते हैं, आपके हजारों रूप हैं, हजारों जीवन प्रकार है, और इन सभी प्रकारों को समझना सामान्य मनुष्य के वश की बात नहीं है॥ ३९ ॥

॥ ४० ॥

महत्वपूर्णं त्वं स विद विद वदारं वहतु नः
सहै प्रेय श्रेय भव विधुर कामः मदन वै ।
स श्रेणं पुष्पं च भवत भव विश्व श्रिय सहै
स धन्यस्त ज्ञेयं महतु मह पूर्ण सह क्रियः ॥

हे गुरुदेव ! हे प्रभु !! यों तो आपके सभी स्वरूप उच्चकोटि के और आनन्ददायक हैं, पर आपका प्रेममय स्वरूप सबसे ज्यादा प्रसन्नतादायक और हृदयग्राही है, जब आपको हास्य करते हुए, विनोद करते हुए, प्रेम प्रदर्शित करते हुए देखते हैं, तो ऐसा लगता है कि जैसे वसन्त पुन. प्रवहित होने लग गया है, पुनः आकाश से अमृत वर्षा होने लग गई है, पुनः कामदेव ने पुष्पों का शर-संधान कर लिया है, पुनः पृथ्वी पर लाखों-लाखों पुष्प विकसित हो गये हैं, और पुनः यह सारा विश्व आनन्ददायक बन गया है, वास्तव में ही वे सौभाग्य-शाली हैं, जिन्होंने आपके ऐसे स्वरूप को देखा है, वास्तव में ही उनके पुण्यों का उदय हुआ है जो आपके निकट हैं, जिन्होंने आपके शरीर का स्पर्श किया है, जो आपकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं, जो आपके हृदय के निकट हैं, उनकी तुलना तो देवताओं से भी नहीं की जा सकती ॥ ४० ॥

॥ ४१ ॥

गुरूर्देवं देवं नहि भवतु शक्यं भ्रमर वै
न सिद्धश्र योगं नहि भ्रमर गुंजं उपवनै।
मृगी क्षी रै वैं न नहि भ्रमति किन्नं वदतुनः
त्व वार्धक्यं श्रेय भवतु भव नृत्य श्रिय प्रियः॥

हे गुरूदेव ! आपके न होने से यह सिद्धाश्रम श्मशान की तरह लगता है, कमल मुरझाने लगते हैं, भ्रमर गुंजरण नहीं करते, हरिण कुलांचे नहीं भरते, अप्सराएं प्रफुल्लित नहीं होतीं, और साधिकाएं मुरझा जाती हैं, सिद्धयोगा झील भी निष्प्राण और निस्तेज हो जाती है, पर फिर आपकी उपस्थिति मात्र से ही इन सब में नई चेतना आ जाती है, सिद्धयोगा झील की लहरें, गुनगुनाने लग जाती हैं, हिरणें और हिरणियां गले से गला सटा कर किलोल करने लग जाती हैं, किन्नरियां नृत्यमय हो जाती हैं, वायु में एक अपूर्व सुगन्ध प्रवहित होने लग जाती है, भ्रमर संगीतमय बन जाते हैं, और कुमुदिनी पानी पर नृत्य करती हुई सी प्रतीत होने लग जाती है, यह सब आपके व्यक्तित्व, आपकी जीवन्तता आपकी सप्राणता और आपकी चैतन्यता ही तो है, आपका व्यक्तित्व अपने आप में अपूर्व है, विभिन्न स्वरूपों का समावेश ऐसा व्यक्तित्व इससे पूर्व पृथ्वी ग्रह पर कभी नहीं हुआ, यह निश्चित है॥ ४१ ॥

॥ ४२ ॥

कृतज्ञं ज्ञेयं च श्रिय वद न पूर्ण भवतु नः
स ब्रह्माण्ड क्षौणं सहि महि त्व वेद विध विधा।
समस्त चैतन्य श्रिय सह महौ पूर्ण इति च
सधन्यस्त ज्ञेय निखिल गुरुवैं वैं श्रिय नतः ॥

हम सिद्धाश्रम के ही नहीं, अपितु भूमण्डल के योगी यति सन्यासी आपके प्रति कृतज्ञ हैं, कि आपने लुप्त संस्कृति को पुनर्जीवित किया, समाप्तप्राय ग्रन्थों को जीवन दान दिया, संस्कृति का पुनरुद्धार किया और हमारे पूर्वजों की थाती तथा ब्रह्माण्ड के रहस्य, जो लुप्त हो गये थे, उन्हें पुनः प्रगट किया, यह सब आपके द्वारा ही सम्भव हो सका है, वेद, उपनिषद, मीमांसा, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि जितनी भी विद्याएं हैं, उन सब विद्याओं को स्पर्श देकर पूर्णता दी, सिद्धाश्रम को सम्पूर्ण भूमण्डल का आध्यात्मिक चेतना केन्द्र बनाया और पूरी पृथ्वी पर भौतिकता एवं आध्यात्मिकता का समन्वय स्थापित किया, इसके लिए वर्तमान विश्व और आने वाली पीढ़ियां आपके प्रति कृतज्ञ रहेंगी और जिन्होंने भी आपके साथ क्षण बिताये हैं, उनका नाम इतिहास में स्मरणीय रहेगा ॥ ४२ ॥

॥ ४३ ॥

गुरूदेव श्रेय वदनं भव नित्य पूर्णं
कह वद निखिलत्वं पूर्ण मंत्र इति वँ।
सह त्वं वै यज्ञ मंत्र तंत्रं त्वरौ यै
सह श्रेय ज्ञान नित्यं भजतु पूर्णं वदौ नः ॥

हे गुरूदेव हम न तो तंत्र जानते हैं और न मंत्र का ही ज्ञान है, न हम भली प्रकार से स्तोत्र का उच्चारण कर सकते हैं, और न ध्यान, पूजा-पाठ, जप-तप आदि। हमें साधना विधियों का भी ज्ञान नहीं, हम तो केवल "निखिल" मंत्र को ही जानते हैं, और इस मंत्र को भी पूर्णता के साथ उच्चारण नहीं कर पाते, जिस प्रकार यदि छोटा बालक तुतलाती भाषा में अशुद्ध शब्द उच्चारण करे, तो पितामह उसकी त्रुटियों पर ध्यान नहीं देते, उसी प्रकार से हम जो कुछ भी कहते हैं, तुतलाती भाषा में ही है, आप इन त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए, हमें पूर्णता की ओर अग्रसर करें, हम किसकी साधना या कौन सी आराधना करें, संसार में सैकड़ों मंत्र हैं, हम किस मंत्र का जप करें, क्या "निखिल" मंत्र से भी बड़ा कोई मंत्र है, क्या आपकी साधना से भी कोई बड़ी साधना है, फिर हमें अन्य साधनाओं और मंत्रों में भटकने से क्या लाभ ? ॥ ४३ ॥

॥ ४४ ॥

नहि भव छल धूर्त दोष पाप प्रपंच
नहि भवतु शक्य सारं पूर्ण वै शीर्ण नित्यं ।
धूलि श्रे श्रीर्म नित्य प्राप्त प्रेम श्रियं वै
त्वं दोष मुक्त रूपं निखिल में रूर्णं त्वं दः ॥

हे प्रभु ! हम सांसारिक प्राणी हैं, और सांसारिक छल-प्रपंचों से घिरे हुए हैं, हमारा मुंह असत्य से मलिन हो गया है, पाप कर्म से हमारा शरीर दोषयुक्त बन गया है, कुदृष्टि से हमारे नेत्र मलिन और अपवित्र हो गये हैं, और निरन्तर कुतर्कों से हमारा चित्त भ्रमित, अपवित्र और पाप-मय हो गया है, ऐसी स्थिति में हम न तो अपने मन को आपके चरणों में भेंट चढ़ा सकते हैं, और न इस गंदले, अपवित्र शरीर को ही, हम यह भी नहीं कह सकते कि हम तन-मन से आपके हैं, जिस प्रकार से एक पिता अपने पुत्र के अपराधों को क्षमा करता हुआ, धूल से सने हुए छोटे से पुत्र को गोदी में उठा लेता है, उसी प्रकार से आप हमें अपना लें, तभी हमारे जीवन का उद्धार सम्भव है, हम तो महामोह के अन्धकार में भटक रहे हैं और सांसारिक यातनाओं के कार्यों से सारा शरीर छिद गया है, ऐसी स्थिति में आप ही हमारा उद्धार कर सकते हैं ॥ ४४ ॥

॥ ४५ ॥

नहि भवति ज्ञान सत्यं सिद्ध वै यौवने त्वं
अहि भ्रमति नद समुद्रे जर्जरे रूप नित्यं।
त्वं पूर्ण पोत भवने भव नित्य देवं
अह आर्तनाद वद ने 'गुरू' रूप श्रेयं ॥

हे, प्रभु ! बचपन में मैं अज्ञानी था, और मुझे किसी प्रकार का ज्ञान नहीं था, युवावस्था में विषय वासनाओं में लिप्त रहा, और साधना के मूल्य और महत्व को नहीं समझा, मेरे घर के और परिवार के संस्कार भी ऐसे नहीं हैं, कि मैं इन विषयों की ओर बढ़ पाता, मैं तो जंगल में भटकता हुआ एक निरीह प्राणी हूं, जिसकी मदद करने वाला कोई नहीं है, मैं समुद्र में बहता हुआ एक विपत्ति ग्रस्त प्राणी हूं जिसका उद्धार करने वाला कोई नहीं है, यदि ऐसी स्थिति में आप भी सहायता नहीं करेंगे, तो पृथ्वी पर फिर अन्य किसी से भी उम्मीद करना व्यर्थ है, ब्रह्मा-विष्णु-महेश और शक्तियां देवी-देवता सभी तो आप में समाहित हैं, और इसीलिए मैं केवल दो अक्षर "गुरू" शब्द का ही उच्चारण करता हुआ सहायता के लिए याचना करता हूं कि आप मुझे इस विपत्ति से बचा कर पूर्णता की ओर अग्रसर करें, यदि ऐसी स्थिति में आपने भी उंगली नहीं थामी, तो देवता भी मेरी सहायता नहीं कर सकते, यह ध्रुव सत्य है ॥ ४५ ॥

॥ ४६ ॥

गुरुवर प्रभु पूर्ण त्वं वदं देव रूपं
भवति जन्म मौक्ष भ्रमति नीच वं निर्निमेष।
नहि शम्यत जानंति त्वं वदे पूर्ण श्रेयं
मह देव देव नित्यं त्वां गति त्वं प्रपद्ये॥

हे गुरुदेव ! इस संसार में आपके चरणों से रहित रहते हुए कई जन्म भोग चुका और यह बात भी सत्य है कि कई-कई जन्मों से आप मेरे साक्षीभूत गुरु हैं, हर बार आप मुझे आवाज देते हैं, हर बार मुझे कुमार्ग से हटा कर साधना पथ पर अग्रसर करते हैं, हर बार मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने का प्रयत्न करते हैं, पर मैं ही दुर्भाग्यशाली हूं, कि बार-बार भटक जाता हूं, मैं ही नीच और अधम व्यक्ति हूं कि आपको भली प्रकार से समझ नहीं पाता, मैं ही गन्दी नाली का कीड़ा हूं, जो कि आप पर व्यर्थ का संदेह मन में लाकर आप से अलग हट जाता हूं और इसीलिए बार-बार मल-मूत्र से भरे हुए गर्भ में जीवन लेना पड़ता है, अब इससे मैं उकता गया हूं, इस बार आप मेरी सहायता अवश्य करें, इस बार आप मुझे जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त कर दें, इस बार आप साधना पथ पर अग्रसर कर मुझे पूर्ण गुरुमय बना दें, यही मेरी आकांक्षा है, यही मेरी भावना है ॥ ४६ ॥

॥ ४७ ॥

गुरुवर महि मौक्ष पूर्ण पोत भवे त्तं
नहि शक्यत भव देवं पुलत ज्ञानंद चेद्वे।
'गुरू' वद वद मंत्र चरण त्वां पूर्ण सिन्धु
अह महि भव आर्त्त नाद त्वं पूर्ण नित्यं॥

हे, गुरूदेव ! इस सिद्धाश्रम के अन्दर और बाहर कई योगियों और सैकड़ों वर्षों की आयु प्राप्त सन्यासियों ने आपकी स्तुति की है, आपके चरित्र का और गुणों का वर्णन किया है, फिर भी उन्होंने स्वीकार किया है कि वे आपके कार्यों को, आपके चरित्र और गुणों को, शब्दों में नहीं बांध पाये, वे आप के ज्ञान की गहराई में जितना ही ज्यादा जाने का प्रयत्न करते हैं, उतनी ही गहराई और प्रतीत होती है, महर्षि पुलस्त्य, महिश्वा, ज्ञानन्द आदि भी आपकी थाह नहीं पा सके, तो मैं तो एक सामान्य ब्रह्मवेत्ता ऋषि हूं, मैं किस प्रकार आपके गुणों को और आपकी महिमा को समझ सकता हूं, मुझे तो केवल दो अक्षरों का "गुरू" शब्द का ज्ञान है, इसके अलावा मैं और मंत्रों की इच्छा भी नहीं रखता, आपके चरणों की अपेक्षा और किसी देवी-देवता के दर्शन करने की इच्छा भी नहीं है, मैं तो पूर्ण रूप से आपके प्रति समर्पित हूं और आप मुझे इस गुरू रूपी नाव से भवसागर पार करा देंगे, ऐसा विश्वास है ॥ ४७ ॥

॥ ४८ ॥

अह भव मद योगी वेद पांग त्व पूर्णं
भव रूप महत् योगी पूर्ण सिन्धुं वदन्न।
त्वं नाम रूप जपतुं भव सिद्ध तत्वं
त्वं नाम सिद्धि, पूर्णं ज्ञानं तपस्वं॥

हे, प्रभु ! मैं इस बात का साक्षी हूं, कि केवल "निखिल" शब्द का उच्चारण कर योगी वेदपांग पूर्ण तत्व-वेत्ता बन गये, केवल आपकी साधना कर सिद्धाश्रम के योगी महत्स्य समस्त साधनाओं और सिद्धियों में पारंगत हो गये, निरन्तर आपकी सेवा कर महर्षि मृकण्ड पूर्ण ब्रह्मर्षि बन गये, इन लोगों ने न तो कोई अन्य साधना की, और न कोई मंत्र जप ही, आज ये ब्रह्माण्ड के श्रेष्ठ ऋषियों में गिने जाते हैं, यह सब आपके शरीर से निकली हुई साधना रश्मियों की प्राप्ति से ही इनके जीवन में सम्भव हुआ है, आपकी सेवा करने से ही समस्त सिद्धियां निश्चित रूप से प्राप्त होती ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं, आपका नाम, आपका चिन्तन, आपका स्मरण आपकी सेवा और आपका साहचर्य ही सही साधना है, पूर्ण तपस्या है, और समस्त देवी-देवताओं का दर्शन है, यह बात मैं दोनों हाथ ऊपर उठा कर आत्मा के प्रकाश से पूर्ण दृढ़ता के साथ कह रहा हूं, जो कि सत्य है ॥ ४८ ॥

॥ ४९ ॥

स्तोत्रं वै च महिम्नं वै श्रेष्ठं प्रामाण्य एव च।
स्वतः उत्पन्न अहेयं नात्र संशय संशयः ॥

॥ ५० ॥

न भक्ति र्न च वै स्तोत्रं न मंत्रं स्तोत्र एव च ।
सार तंत्रश्च मंत्रश्च मूलं भक्ति श्च पूर्णदः ॥

॥ ५१ ॥

न स्तोत्र मंत्र न ज्ञानं न ध्यानं न जपं विधिः ।
स्वतः यः स्तौत्र तत्सिद्धि चैतन्यं पूर्ण वाग् भवेत् ॥

॥ ४९ ॥

यह स्तोत्र सभी स्तोत्रों में श्रेष्ठ है, यह महिम्न सभी उपलब्ध महिम्नों से उच्च है, इसका प्रत्येक अक्षर अपने आप में प्रामाणिक और चैतन्य है, क्योंकि उच्चकोटि की साधना और तपस्या कर ब्रह्म चेतना जाग्रत होने पर ये श्लोक स्वतः उद्घाटित हुए हैं, अतः ये सारे श्लोक अपने आप में ही अद्वितीय और प्रामाणिक हैं

॥ ५० ॥

न तो इससे बड़ा स्तोत्र है, और न इससे ऊंचा भक्ति काव्य, न तो इससे बड़ी कोई साधना विधि है और न इससे बड़ा कोई मन्त्रों से सम्बन्धित ग्रन्थ, यह स्तोत्र अपने आप में सम्पूर्ण मंत्रों का सार है, समस्त तन्त्रों का आधार है, और समस्त साधनाओं का मूल स्वरूप है

॥ ५१ ॥

यदि कोई साधक किसी प्रकार का कोई मंत्र जप या साधना नहीं करता, तो इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि इस स्तोत्र के माध्यम से वह सब कुछ प्राप्त हो सकता है जो हजारों-हजारों साधनाओं को करने से उपलब्ध होता है, इस स्तोत्र में स्वतः सिद्धियों की रश्मियां हैं, जिससे सारा शरीर साधनामय होकर चैतन्य बन जाता है, और सिद्धि प्राप्त हो जाती है

॥ ५२ ॥

दीक्षा दानं जपस्तीर्थं ज्ञानं यज्ञं च व्यर्थ यः ।
यः स्तोत्र कौस्तुभं श्रेष्ठ अन्यत्र किं प्रयोजनम् ॥

॥ ५३ ॥

न रोगं शोक दुःखं च राज्य कोपो न संकटः ।
एक वारं पठेत् स्तोत्रं पूर्ण सिद्धिश्च वाग्भवेत् ॥

॥ ५४ ॥

धर्मार्थ काम मोक्षाणां यः स्तोत्रं वरदायकः ।
प्राप्यते पुत्र पौत्रं च धनं लक्ष्मी श्रियं भवेद् ॥

॥ ५२ ॥

दीक्षा, दान, जप, तप, पूजा पाठ, तीर्थ, व्रत, उद्यापन आदि सब व्यर्थ है, गंगा स्नान और हिमालय में मंत्र जप करना फालतू है, पत्तों से जीवन निर्वाह करना व्यर्थ है, जब हमारे पास कौस्तुभ मणि की तरह देदीप्यमान यह स्तोत्र उपलब्ध है, तो फिर इससे बड़ा व्रत, तीर्थ, उपासना या साधना क्या हो सकती है ?

॥ ५३ ॥

जो भक्त साधक या शिष्य नित्य इस स्तोत्र का एक बार पाठ कर लेता है, उसके जीवन में कोई बाधा या परेशानी आती ही नहीं, समस्त प्रकार के भय से मुक्त हो जाता है, राज कोप से छुटकारा पा लेता है, भयंकर बीमारी से मुक्त हो जाता है, जीवन में किसी भी प्रकार का आकस्मिक और आसन्न संकट होने पर मात्र इसका पाठ करने से वह संकट दूर हो जाता है, यह ध्रुव सत्य है ।

॥ ५४ ॥

जो साधना करना चाहते हैं, जो सिद्धियों के इच्छुक हैं, जो देवी-देवताओं के प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहते हैं, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा रखते हैं, उनके लिए तो यह वरदायक स्तोत्र है, मात्र इस स्तोत्र का पाठ करने से ही ये सब कुछ सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं, यह प्रामाणिक है ।

॥ ५५ ॥

अधर्मं पाप व्यभिचार श्रद्धायुक्तं पठेत् नरः।
मुक्त पापं च दोषं च पूर्ण सिद्धि नं संशय॥

॥ ५६ ॥

गुरू पूजां करोति वैं शत अष्टोत्तर पठन्ति यः।
एकादशे दिने कुर्यात् पूर्ण सिद्धि लभेत् नरः॥

॥ ५७ ॥

न तत्व स्य जानाहं न साध्यं ध्यान योग नः।
पूर्ण सिद्धि भवेत् लाभं पठेत् स्तोत्र नरोतु यः॥

॥ ५५ ॥

यदि कोई व्यक्ति पापी हो, अधर्मी हो, व्यभिचारी हो, या पापरत हो, वह भी यदि इस स्तोत्र का श्रद्धा युक्त पाठ करता है तो वह समस्त पापों से मुक्त होकर सही साधक बन कर उच्चता की ओर अग्रसर हो जाता है।

॥ ५६ ॥

यदि कोई व्यक्ति सामने गुरू चित्र स्थापित करे, उसकी पूर्ण पूजा कर दीपक अगरबत्ती लगा कर, इस स्तोत्र का १०८ बार पाठ करे, और इस प्रकार ११ दिन तक करे तो कठिन से कठिन और असंभव से असंभव कार्य भी संभव हो जाते हैं, यह सत्य है।

॥ ५७ ॥

इस स्तोत्र से बड़ी कोई साधना नहीं है, और इस स्तोत्र से बड़ा न तो कोई तत्व है और न ब्रह्म ज्ञान, न कोई भक्ति है, और न कोई चिन्तन, केवल मात्र इस स्तोत्र के पाठ करने से ही व्यक्ति अपनी मनोवांछित कामना पूर्ण कर लेता है।

॥ ५८ ॥

दिवसो पूर्णं सिद्धि वँ एक वारं पठंति यः ।
सकलं कार्य सिद्धिश्च पूर्ण सिद्धिश्च लभ्यते ॥

जो नित्य प्रातः काल उठ कर एक बार इस स्तोत्र का पाठ कर लेता है, उसका पूरा दिन और पूरी रात प्रफुल्लता, प्रसन्नता और सफलता से युक्त होती है ।

॥ ५९ ॥

लक्ष्मी शत सहस्रे श्च प्राप्यते पठतं नरः ।
रोगं शोकं च दारिद्रचं नश्यंति धन सः श्रियं ॥

इस स्तोत्र में लक्ष्मी तत्व समावेश है, अतः मात्र इसका पाठ करने से ही जन्म-जन्म की दरिद्रता समाप्त होती है ।

॥ ६० ॥

ब्रह्माण्डोत्पन्न श्लोकं च अगर्भा स्तोत्र संजयेत् ।
सिद्ध सिद्धि वं पूर्णं च अहेयं सिद्धि वाग्भवेत् ॥

यह स्तोत्र मैंने ब्रह्म ज्ञान उदय होने पर अनायास ब्रह्माण्ड से उत्पन्न ध्वनियों और शब्दों के संयोजन से निर्मित किया है, अतः यह स्तोत्र स्वयं उत्पन्न और ब्रह्माण्ड रहस्यों से सिद्ध है जो कि सभी दृष्टियों से पूर्ण, श्रेष्ठ एवं अपने आप में समस्त उपलब्ध ज्ञान विज्ञान में उन्नत एवं अद्वितीय है ।